श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

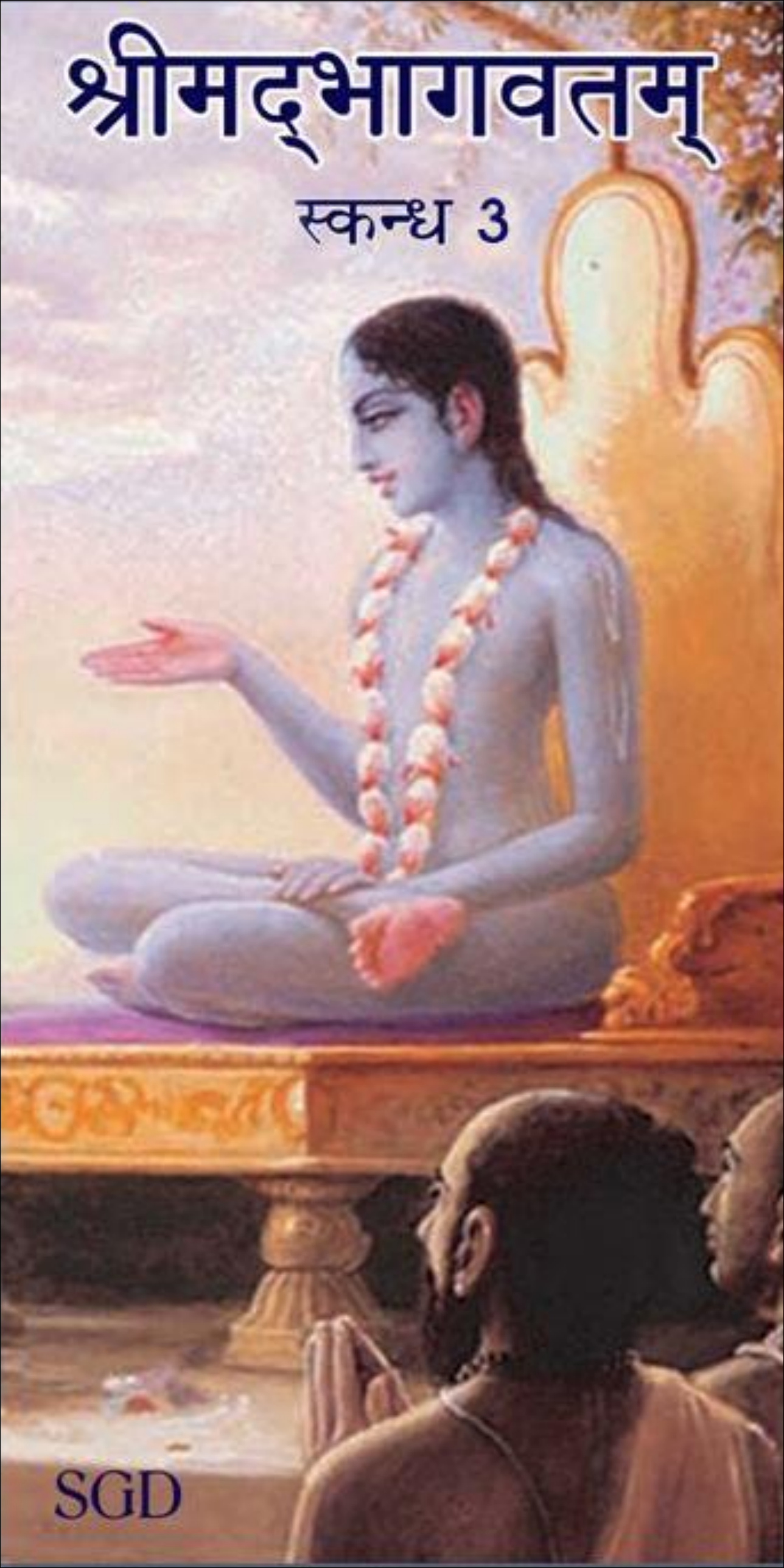

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 25

भक्तियोग की महिमा

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: श्री शौनक ने कहा : यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अजन्मा हैं, किन्तु उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति से कपिल मुनि के रूप में जन्म धारण किया। वे सम्पूर्ण मानव जाति के लाभार्थ दिव्य ज्ञान का विस्तार करने के लिए अवतरित हुए।

श्लोक 2: शौनक ने आगे कहा : स्वयं भगवान् से अधिक जानने वाला

कोई अन्य नहीं है। न तो कोई उनसे अधिक पूज्य है, न अधिक प्रौढ़ योगी। अत: वे वेदों के स्वामी हैं और उनके विषय में सुनते रहना इन्द्रियों को सदैव वास्तविक आनन्द प्रदान करने वाला है।

श्लोक 3: अत: कृपया उन भगवान् के समस्त कार्यकलापों एवं लीलाओं का संक्षेप में वर्णन करें, जो स्वतन्त्र हैं और अपनी अन्तरंगा शक्ति से इन सारे कार्यकलापों को सम्पन्न करते हैं।

श्लोक 4: श्रीसूत गोस्वामी ने कहा : परम शक्तिमान ऋषि मैत्रेय व्यासदेव के मित्र थे। दिव्य ज्ञान के विषय में विदुर की जिज्ञासा से प्रोत्साहित एवं प्रसन्न होकर मैत्रेय ने इस प्रकार कहा।

श्लोक 5: मैत्रेय ने कहा : जब कर्दम मुनि बन चले गये तो भगवान् कपिल अपनी माता देवहूति को प्रसन्न करने के लिए बिन्दु सरोवर के तट पर रहे आये।

श्लोक 6: अपनी माँ देवहूति को परम सत्य का चरम लक्ष्य दिखला

सकने में समर्थ कपिल जब उसके समक्ष फुरसत से बैठे थे तो देवहूति को वे शब्द याद आये जो ब्रह्मा ने उससे कहे थे, अत: वह कपिल से इस प्रकार प्रश्न पूछने लगी।

श्लोक 7: देवहूति ने कहा : हे प्रभु, मैं अपनी इन्द्रियों के विक्षोभ से ऊबी हुई हूँ और इसके फलस्वरूप मैं अज्ञान रूपी अन्धकार के गर्त में गिर गई हूँ।

श्लोक 8: हे प्रभो, आप ही अज्ञान के इस घने अन्धकार से बाहर निकलने के एकमात्र साधन हैं,

क्योंकि आप ही मेरे दिव्य नेत्र हैं जिसे मैंने आपके अनुग्रह से अनेकानेक जन्मों के पश्चात् प्राप्त किया है।

श्लोक 9: आप श्रीभगवान् हैं, जो समस्त जीवों के मूल तथा परमेश्वर हैं। आप ब्रह्माण्ड के अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य की किरणें विस्तारित करने के लिए उदित हुए हैं।

श्लोक 10: हे प्रभु, अब प्रसन्न हों और मेरे महा मोह को दूर करें। अहंकार के कारण मैं आपकी माया में व्यस्त रही और मैंने अपने आपको

शरीर रूप में तथा फलस्वरूप शारीरिक सम्बन्धों के रूप में पहचाना।

श्लोक 11: देवहूति ने आगे कहा : मैंने आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण की है, क्योंकि आप ही एकमात्र व्यक्ति हैं जिनकी शरण ग्रहण की जा सकती है। आप वह कुल्हाड़ी हैं जिससे संसार रूपी वृक्ष काटा जा सकता है। अत: मैं आपको नमस्कार करती हूँ, क्योंकि समस्त योगियों में आप महानतम हैं। मैं आपसे पुरुष तथा स्त्री और आत्मा तथा पदार्थ के

सम्बन्ध के विषय में जानना चाहती हूँ।

श्लोक 12: मैत्रेय ने कहा : दिव्य साक्षात्कार के लिए अपनी माता की कल्मषरहित इच्छा को सुनकर भगवान् ने मन-ही-मन उनके प्रश्नों के लिए धन्यवाद दिया और इस प्रकार मुस्कान-युत मुख से उन्होंने आत्म-साक्षात्कार में रुचि रखने वाले अध्यात्मवादियों के मार्ग की व्याख्या की।

श्लोक 13: भगवान् ने उत्तर दिया : जो योग पद्धति भगवान् तथा

व्यक्तिगत जीवात्मा को जोड़ती है, जो जीवात्मा के चरम लाभ के लिए है और जो भौतिक जगत में समस्त सुखों तथा दुखों से विरक्ति उत्पन्न करती है, वही सर्वोच्च योग पद्धति है।

श्लोक 14: हे परम पवित्र माता, अब मैं आपको वही प्राचीन योग पद्धति समझाऊँगा, जिसे मैंने पहले महान् ऋषियों को समझाया था। यही हर प्रकार से उपयोगी एवं व्यावहारिक है।

श्लोक 15: जीवात्मा की चेतना जिस अवस्था में प्रकृति के तीन गुणों

के द्वारा आकृष्ट होती है, वह बद्धजीवन कहलाती है। किन्तु जब वही चेतना श्रीभगवान् के प्रति आसक्त होती है, तो मनुष्य मोक्ष की चेतना में स्थित हो।

श्लोक 16: जब मनुष्य शरीर को "मैं" तथा भौतिक पदार्थों को "मेरा" मानने के झूठे भाव से उत्पन्न काम तथा लोभ के विकारों से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, तो उसका मन शुद्ध हो जाता है। उस विशुद्धावस्था में वह तथाकथित भौतिक सुख तथा दुख की अवस्था को लाँघ जाता है।

श्लोक 17: उस समय जीव अपने आपको संसार से परे, सदैव स्वयंप्रकाशित, अखंडित एवं सूक्ष्म आकार में देख सकता है।

श्लोक 18: आत्म-साक्षात्कार की उस अवस्था में मनुष्य ज्ञान तथा भक्ति में त्याग के अभ्यास से प्रत्येक वस्तु को सही रूप में देख सकता है, वह इस संसार के प्रति अन्यमनस्क हो जाता है और उस पर भौतिक प्रभाव अत्यल्प प्रबलता के साथ काम कर पाते हैं।

श्लोक 19: किसी भी प्रकार का योगी जब तक श्रीभगवान् की भक्ति में प्रवृत्त नहीं हो जाता, तब तक आत्म-साक्षात्कार में पूर्णता नहीं प्राप्त की जा सकती, क्योंकि भक्ति ही एकमात्र शुभ मार्ग है।

श्लोक 20: प्रत्येक विद्वान व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि सांसारिक आसक्ति ही आत्मा का सबसे बड़ा बन्धन है। किन्तु वही आसक्ति यदि स्वरूपसिद्ध भक्तों के प्रति हो जाय तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

श्लोक 21: साधु के लक्षण हैं कि वह सहनशील, दयालु तथा समस्त जीवों के प्रति मैत्री-भाव रखता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता, वह शान्त रहता है, वह शास्त्रों का पालन करता है और उसके सारे गुण अलौकिक होते हैं।

श्लोक 22: ऐसा साधु अविचलित भाव से भगवान् की कट्टर भक्ति करता है। भगवान् के लिए वह संसार के अन्य समस्त सम्बन्धों यथा पारिवारिक सम्बन्ध तथा मैत्री का परित्याग कर देता है।

श्लोक 23: निरन्तर मेरे अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान के कीर्तन तथा श्रवण में संलग्न रहकर साधुगण किसी प्रकार का भौतिक कष्ट नहीं पाते, क्योंकि वे सैदव मेरी लीलाओं तथा कार्यकलापों के विचारों में ही निमग्न रहते हैं।

श्लोक 24: हे माते, हे साध्वी, ये उन महान् भक्तों के गुण हैं, जो समस्त आसक्तियों से मुक्त हैं। तुम्हें ऐसे पवित्र पुरुषों की संगति करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी संगति भौतिक आसक्ति के समस्त कुप्रभावों को हरने वाली है।

श्लोक 25: शुद्ध भक्तों की संगति में श्रीभगवान् की लीलाओं तथा उनके कार्यकलापों की चर्चा कान तथा हृदय को अत्यधिक रोचक एवं प्रसन्न करने वाली होती है। ऐसे ज्ञान के अनुशीलन मे मनुष्य धीरे-धीरे मोक्ष मार्ग में अग्रसर होता है, तत्पश्चात् मुक्त हो जाता है और उसका आकर्षण स्थिर हो जाता है। तब असली समर्पण तथा भक्तियोग का शुभारम्भ होता है।

श्लोक 26: इस प्रकार भक्तों की संगति में सचेत होकर भक्ति करते हुए भगवान् के कार्यकलापों के विषय में

निरन्तर सोचते रहने से मनुष्य को इस लोक में तथा परलोक में इन्द्रियतृप्ति के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। कृष्णभावनामृत की यह विधि योग की सरलतम विधि है। जब मनुष्य भक्तियोग के मार्ग में सही-सही स्थित हो जाता है, तो यह अपने चित्त (मन) को नियन्त्रित करने में सक्षम होता है।

श्लोक 27: इस तरह प्रकृति के गुणों की सेवा में न लगकर, अपितु कृष्णभक्ति विकसित करके, वैराग्य युक्त ज्ञान प्राप्त करके तथा योग के

अभ्यास से, जिसमें मनुष्य का मन सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान की भक्तिमय सेवा में स्थिर रहता है, मनुष्य इसी जीवन में मेरा साहचर्य (संगति) प्राप्त कर लेता है, क्योंकि मैं परम पुरुष अर्थात् परम सत्य हूँ।

श्लोक 28: भगवान् का यह वचन सुनकर देवहूति ने पूछा : मैं किस प्रकार के भक्तियोग का विकास और अभ्यास करूँ जिससे मुझे आपके चरणकमलों की सेवा तत्काल एवं सरलता से प्राप्त हो सके?

श्लोक 29: आपने जैसा बताया है कि योग पद्धति का उद्देश्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को प्राप्त करने और सांसारिक अस्तित्व (माया) के पूर्णतया विनाश के लिए है, तो कृपया मुझे उस योग पद्धति की प्रकृति बतलाएँ। उस अलौकिक योग को यथार्थ रूप में कितनी विधियों से समझा जा सकता है?

श्लोक 30: मेरे पुत्र कपिल, आखिर मैं एक स्त्री हूँ। परम सत्य को समझ पाना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है, क्योंकि मेरी बुद्धि इतनी कुशाग्र

नहीं है। यद्यपि मैं इतनी बुद्धिमान नही हूँ। किन्तु तो भी, यदि आप मुझे कृपा करके समझाएँगे तो मैं उसे समझ कर दिव्य सुख का अनुभव कर सकूँगी।

श्लोक 31: श्रीमैत्रेय ने कहा : अपनी माता का कथन सुनकर कपिल उसका प्रयोजन समझ गये और उसके प्रति दयार्द्र हो उठे, क्योंकि उन्होंने उसके शरीर से जन्म लिया था। उन्होंने सांख्य दर्शन का वर्णन किया जो शिष्य-परम्परा से प्राप्त भक्ति तथा योगिक साक्षात्कार का एक मिलाजुला रूप है।

श्लोक 32: भगवान् कपिल ने कहा : ये इन्द्रियाँ दैवों की प्रतीकात्मक प्रतिनिधि हैं और इनका स्वाभाविक झुकाव वैदिक आदेशों के अनुसार कर्म करने में है। जिस प्रकार इन्द्रियाँ देवताओं देवताओं की प्रतीक हैं, उसी प्रकार मन भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रतिनिधि है। मन का प्राकृतिक कार्य सेवा करना है। जब यह सेवा-भाव किसी हेतु के बिना श्रीभगवान् की सेवा में लगा रहता है, तो यह सिद्धि से कहीं बढ़कर है।

श्लोक 33: भक्ति जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर को बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के उसी प्रकार विलय कर देती है, जिस प्रकार जठराग्नि खाये हुए भोजन को पचा देती है।

श्लोक 34: जो भक्ति-कार्यों में संलग्न है और जो मेरे चरणकमलों की सेवा में निरन्तर लगा रहता है, ऐसा शुद्ध भक्त कभी भी मुझसे तदाकार (एकात्म) होना नहीं चाहता। ऐसा भक्त जो अविचिलित होकर लगा रहता है सदैव मेरी लीलाओं तथा कार्य-कलापों का गुणगान करता है।

श्लोक 35: हे माता, मेरे भक्त नित्य ही उदीयमान प्रभात के सूर्य सदृश नेत्रों से युक्त मेरे प्रसन्न मुखमण्डल वाले रूप का अवलोकन करते हैं। वे मेरे विभिन्न दिव्य मित्रवत रूपों को देखना चाहते हैं और साथ ही मुझसे अनुकूल सम्भाषण करना चाहते हैं।

श्लोक 36: भगवान् के मुसकाते तथा आकर्षक स्वरूप को देखकर तथा उनके अत्यन्त मोहक शब्दों को सुनकर शुद्ध भक्त अपनी अन्य समस्त चेतना खो बैठते हैं। उनकी इन्द्रियाँ

अन्य समस्त कार्यों से मुक्त होकर भक्ति में तल्लीन हो जाती हैं। इस प्रकार अनिच्छित ही सही उसे अनायास मुक्तिप्राप्त हो जाती है।

श्लोक 37: इस प्रकार मेरे ही विचारों में निमग्न रहने के कारण भक्त को स्वर्गलोक में प्राप्य श्रेष्ठ वर (जिसमें सत्यलोक सम्मिलित है) की भी इच्छा नहीं रह जाती। उसमें योग से प्राप्त होने वाली अष्ट सिद्धियों की भी कामना नहीं रह जाती, न ही वह ईश्वर के धाम पहुँचना चाहता है। तथापि न चाहते हुए भी, इसी जीवन

में भक्त प्रदान किए गये उन समस्त वरदानों को भोगता है।

श्लोक 38: भगवान् ने आगे कहा : हे माते, जो भक्त ऐसा दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त कर लेते हैं, वे उससे कभी वंचित नहीं होते। ऐसे ऐश्वर्य को न तो आयुध, न काल-परिवर्तन ही विनष्ट कर सकता है। चूँकि भक्तगण मुझे अपना मित्र, सम्बन्धी, पुत्र, शिक्षक, शुभचिन्तक तथा परमदेव मानते हैं, अत: किसी काल में भी उनसे यह ऐश्वर्य छीना नहीं जा सकता।

श्लोक 39-40: इस प्रकार जो भक्त मुझे सर्वव्यापी, जगत् के स्वामी की अनन्य भाव से पूजा करता है, वह स्वर्ग जैसे उच्चतर लोकों में भेजे जाने अथवा इसी लोक में धन, सन्तति, पशु, घर अथवा शरीर से सम्बन्धित किसी भी वस्तु के साथ सुख पूर्वक रहने की समस्त कामनाओं को त्याग देता है। मैं उसे जन्म और मृत्यू के सागर के उस पार ले जाता हूँ।

श्लोक 41: यदि कोई मुझको छोडक़र अन्य की शरण ग्रहण करता है, तो वह जन्म तथा मृत्यु के विकट

भय से कभी छुटकारा नहीं पा सकता, क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान, परमेश्वर अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, समस्त सृष्टि का आदि स्रोत तथा समस्त आत्माओं का भी परमात्मा हूँ।

श्लोक 42: यह मेरी श्रेष्ठता है कि मेरे ही भय से हवा बहती है, मेरे ही भय से सूर्य चमकता है और मेघों का राजा इन्द्र मेरे ही भय से वर्षा करता है। मेरे ही भय से अग्नि जलती है और मेरे ही भय से मृत्यु इतनी जानें लेती है।

श्लोक 43: योगीजन दिव्य ज्ञान तथा त्याग से युक्त होकर एवं अपने शाश्वत लाभ के लिए मेरे चरणकमलों में शरण लेते हैं और चूंकि मैं भगवान् हूँ, अत: वे भयमुक्त होकर भगवद्धाम में प्रवेश पाने के लिए पात्र हो जाते हैं।

श्लोक 44: अत: जिन व्यक्तियों के मन भगवान् में स्थिर हैं, वे भक्ति का तीव्र अभ्यास करते हैं। जीवन की अन्तिम सिद्धि प्राप्त करने का यही एकमात्र साधन है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव